अध्याय 15

न्यायपालिका

इस अध्याय में आप सीखेंगे किः

- एक स्वस्थ लोकतांत्रिक देश में न्यायपालिका की क्या आवश्यकता है और उसके महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त होगी तथा भारत में न्यायपालिका की स्थिति क्या है।
- भारत में न्यायिक ढाँचा, उसके स्वरूप क्या है और अधिकार के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।
- हाल ही के वर्षों में न्यायिक क्षेत्रों में प्रचलित नवीन अवधारणाओं जैसे जनहितवाद, स्वतःसंज्ञान, सर्वोच्च न्यायालय की सामाजिक, न्यायिक पुनरावलोकन के साथ-साथ विभिन्न नवीन न्यायिक प्रणालियों के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।

परिचय (Introduction)

भारत में संघात्मक शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है, जिसके कारण शासन की शक्तियों का बंटवारा केन्द्र तथा राज्यों में किया गया है। शक्तियों के बंटवारे के कारण केन्द्र तथा राज्यों के पारस्परिक झगड़े उत्पन्न होने का सदा ही डर बना रहता है। केन्द्र तथा राज्यों के आपसी झगड़ों को निपटाने के लिए एक निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायपालिका का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में संविधान को सर्वोच्च कानून माना गया है और नागरिकों को भी मौलिक अधिकार दिए गए हैं। संविधान की रक्षा और मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका का और भी अधिक महत्त्व है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायपालिका के महत्त्व को समझते हुए ही भारत में सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की है।

भारत की संघीय व्यवस्था में न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संवधान में स्पष्ट उल्लेख है कि यदि केन्द्र और राज्यों के बीच अथवा एक राज्या का दूसरे राज्यों के साथ विवाद उत्पन्न हो जाये तो उसका समाधान न्यायपालिका ही करेगी। इसका महत्त्व एक अन्य कारण से भी है। भारत एक लोकतांत्रिक देश है जिसमें नागरिकों को कई अधिकार प्राप्त हैं। उनके अधिकारों के सम्मान और संरक्षण के लिए तथा सरकार की शक्तियों को नियंत्रित सीमा में रखने के लिए भी न्यायपालिका आवश्यक है।

न्यायपालिका सरकार का तीसरा अंग है। इसका आधारभूत प्रकार्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित तथा कार्यपालिका द्वारा क्रियान्वित कानूनों को व्यक्तिगत मामलों में लागू कर समाज में न्याय की स्थापना करना है। भारत में न्यायपालिका की व्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायपालिका की व्यवस्था से भिन्न है। संयुक्त राज्य अमेरिका में संघ एवं राज्यों के न्यायालयों के लिए अलग-अलग पद सोपानीय अधिक्रम है। भारत में इसके विपरीत समूचे गणराज्य के लिए न्यायालयों का एक एकीकृत व्यवस्था है। इस अधिक्रम में चोटी पर भारत का उच्चतम न्यायालय है तथा उसके अधीन मध्यवर्ती स्तर पर राज्यों के उच्च न्यायालय हैं। संरचना के विषय में भारतीय न्यायपालिका ब्रिटिश न्यायपालिका के समान है, जबकि शक्तियों के विषय में यह संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायपालिका के समान है।

एकीकृत न्यायपालिका (Unitary Judiciary)

यद्यपि भारत एक संघात्मक राज्य है तथापि यहाँ एकीकृत न्यायपालिका को अपनाया गया है। जबकि भारत में संघात्मक व्यवस्था के अनुरूप केन्द्र और राज्य के लिए अलग-अलग कार्यपालिका और विधानमण्डल हैं और संविधान में उनकी शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है, लेकिन न्यायपालिका के विषय में इस तरह का विभाजन नहीं किया गया है।

भारत में अमेरिका आदि देशों की भाँति केन्द्र और राज्यों के लिए अलग-अलग न्यायालय नहीं हैं और न ही विभिन्न न्यायालयों के बीच शक्तियों का बंटवारा किया गया है। भारतीय न्यायपालिका की संरचना एक पिरामिड की भाँति है जिसमें सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय स्थित है। प्रत्येक ऊपरी न्यायालय अपने नीचे के न्यायालय पर नियंत्रण रखता है। अत: हमारी न्याय व्यवस्था एकात्मक है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Freedom of Judiciary)

भारत जैसे संघात्मक व्यवस्था वाले देशों में न्यायपालिका की भूमिका अन्यंत महत्त्वपूर्ण तथा संवेदनशील होता है। अत: भारत में न्यायपालिका को कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका से स्वतंत्र रखने का प्रयास किया गया है। संसदीय व्यवस्था वाले देशों में सरकार बहुत शक्तिशाली होती है, क्योंकि कार्यपालिका के सदस्य विधायिका के भी सदस्य होते हैं, अर्थात् मंत्रिपरिषद के सदस्य संसद सदस्यों में से ही लिये जाते हैं। अत: ऐसी स्थिति में नागरिकों के अधिकारों को कार्यपालिका से हमेशा खतरा रहता है। अत: आवश्यक है कि न्यायपालिका को नागरिकों के अधिकारों का संरक्षक बनाया जाय और न्यायपालिका इस कार्य को प्रभावी रूप से तभी कर सकती है, जब उसे स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाया जाए।

भारत में न्यायपालिका को कार्यपालिका और व्यवस्थापिका से पृथक रखने का प्रयास किया गया है। संविधान के भाग-4 में नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत अनुच्छेद-50 राज्य को यह निर्देश देता है कि राज्य, लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक रखने का प्रयास करेगा।

सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद के सलाह पर की जाती है, लेकिन इन नियुक्तियों को राजनीति से अलग रखने के लिए राष्ट्रपति से यह अपेक्षा की गई है कि वह इस विषय में कोलेजियम (सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश तथा चार अन्य वरिष्ठ न्यायाधीशों से मिलकर बनती है) से परामर्श करे। संविधान में न्यायाधीशों की पदावधि को सुरक्षा प्रदान की गई है। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पदच्युत करने के लिए संविधान में 'महाभियोग' जैसे विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया गया है। उक्त न्यायाधीशों को राष्ट्रपति साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर संसद के दोनों सदनों के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से पारित समावेदन पर ही पद से हटा सकता है (विशेष बहुमत)।

सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को वेतन, भत्ता और पेंशन संचित निधि से दिया जाता है और उनके कार्यकाल के दौरान वेतन, भत्ते इत्यादि में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। संसद सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की सिविल और आपराधिक अधिकारिता को बढ़ा तो सकती है, लेकिन घटा नहीं सकती है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए किये गए आचरण पर संसद के किसी सदन में अथवा राज्यों के विधानमण्डल के किसी सदन में चर्चा नहीं की जा सकती।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-129 और 215 में क्रमश: सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को अपनी अवमानना के लिए किसी भी व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति प्रदान की गई है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को अपने कर्मचारियों की नियुक्ति और उनकी सेवा शर्तों को निर्धारित करने तथा अपनी आंतरिक प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति प्रदान की गई है। जिससे इन न्यायालयों के संस्थापन के विषय में सरकार का हस्तक्षेप न हो।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का संवैधानिक आधार

राज्य के नीति निदेशक तत्त्व के अंतर्गत अनु. 50 में कहा गया है कि राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए कदम उठाये। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन आदि में सामान्यतया कटौती करके उन्हें प्रभावित नहीं कर सकता है। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पद से हटाने की विशेष प्रक्रिया है।

संसद उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता और शक्तियों में कटौती नहीं कर सकती है (अनु. 138)। अनु. 121 के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा किये गये कार्यों के सम्बंध में कोई चर्चा नहीं हो सकती सिवाय उसके पद से हटाये जाने की। अनु. 129 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय एवं अनु. 229 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति इन न्यायालयों के अंतर्गत आंतरिक मामला है। सेवानिवृत्ति के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को भारत-राज्य क्षेत्र के अंतर्गत किसी भी न्यायालय या प्राधिकरण में वकालत करने से रोका गया है।

सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court)

भारत में संविधान की सर्वोच्चता स्थापित की गयी है और संविधान का अंतिम निर्वाचन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है। भारत में मौलिक अधिकारों के लिए भी न्यायपालिका को महत्त्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि न्यायपालिका के जरिए ही मौलिक अधिकार को बल प्राप्त होता है। मौलिक अधिकारों के व्यापक प्रसार के लिए न्यायपालिका का संरक्षण आवश्यक है। ग्रेनविल ऑस्टिन ने कहा है सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों और अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकारों के संरक्षण का कार्य सौंपकर वस्तुत: उसे 'सामाजिक क्रांति के संरक्षक' का भार सौंपा गया है।

प्रारंभ में सर्वोच्च न्यायालय में 1 मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीश थे। 1985 में मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर 25 कर दी गई। फरवरी 2008 में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 31 है। (1 मुख्य न्यायाधीश तथा 30 अन्य न्यायाधीश)। सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या में बढ़ोत्तरी या कमी करने की शक्ति केन्द्रीय संसद में निहित है। जबकि उच्च न्यायालयों में राष्ट्रपति न्यायाधीशों की संख्या का निर्धारण करता है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति (Appointment of Justice of Supreme court)

उच्चतम न्यायालय के समस्त न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर एवं मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा करता है। किंतु अन्य शक्ति की भाँति यह राष्ट्रपति की औपचारिक शक्ति है। संसदीय प्रणाली के कारण इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति संघीय मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार ही करता है।

इन नियुक्तियों की प्रक्रिया के संबंध में राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 143 के अंतर्गत 1998 में मुख्य न्यायाधीश और उसके अन्य न्यायाधीशों से परामर्श माँगा था। इस संबंध में नौ सदस्यीय न्यायपीठ ने यह परामर्श दिया कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति को दी गई राय, ऐसी मंडली से परामर्श करके निर्मित होनी चाहिए, जिसमें भारत का मुख्य न्यायाधीश और न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीश सम्मिलित हों।

वर्तमान में कोलेजियम की सलाह पर ही सर्वोच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों की नियुक्ति होती है। सामान्यतः वरिष्ठ न्यायाधीश को मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति किया जाता है।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति

यदि मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो अथवा पदासीन मुख्य न्यायाधीश अनुपस्थित या अन्यथा अपने पद के कर्त्तव्यों के पालन में असमर्थ हो, तब संविधान में 'कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश' की नियुक्ति का भी प्रावधान है। इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से की जाती है।

तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Adhoc Justice)

यदि किसी समय उच्चतम न्यायालय में स्थायी न्यायाधीशों की संख्या सत्र चलाने के लिए पर्याप्त न हो, तो तदर्थ आधार पर भी न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है। इसके लिए मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति से पूर्व सहमति लेना आवश्यक है। यह अस्थायी नियुक्ति राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों में से की जाती है। नियुक्ति हेतु आवश्यक अर्हता में कोई रियायत नहीं दी जाती है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की योग्यताएँ

उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नांकित योग्यताएँ होनी आवश्यक हैं:

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. एक या अधिक उच्च न्यायालय में लगातार कम से कम 10 वर्षों तक अधिवक्ता (वकील) रहा हो,
3. किसी उच्च न्यायालय में लगातार कम से कम पाँच वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो या
4. राष्ट्रपति की सम्मति में वह पारंगत विधिवेत्ता हो।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की शपथ

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए नियुक्ति प्रत्येक व्यक्ति को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ लेनी होती है। यह शपथ राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस प्रयोजन से नियुक्ति व्यक्ति के समक्ष ली जाती है। ईश्वर की शपथ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञात करने का प्रारूप संविधान की तीसरी अनुसूची में वर्णित है। इस शपथ में निम्न बातें होती हैं:

1. संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा,
2. भारत की प्रभुता एवम् अखण्डता को अक्षुण बनाये रखना,
3. संविधान एवम् विधियों की मर्यादा,
4. योग्यता ज्ञान, विवेक की आधार पर कार्य।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की उन्मुक्तियाँ

न्यायाधीशों द्वारा अपने पद के दायित्वों को निभाने के दौरान किए गए किसी कार्य एवं निर्णयों की आलोचना नहीं की जा सकती। उन पर पक्षपात करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। इन उन्मुक्तियों पर यह बंधन भी है कि सेवानिवृत्ति के पश्चात् वे भारत के राज्यक्षेत्र के किसी न्यायालय या अधिकारी के सम्मुख वकालत नहीं कर सकते। उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्त्तव्य के निर्वहन में किये गये किसी आचरण के विषय में संसद में चर्चा नहीं होगी, किंतु जब ऐसी किसी न्यायाधीश को हटाने का प्रस्ताव अगर संसद में चल रहा हो तो संसद में चर्चा की जा सकेगी।

पदावधि एवं पदच्युति

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बना रहता है। यह आयु-सीमा मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों के लिए समान ही है। कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पदावधि पूर्ण होने से पूर्व भी पद त्याग सकता है। इसके अतिरिक्त भी किसी न्यायाधीश को संसद में अभियोग चलाकर हटाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 124(4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने की प्रक्रिया का उल्लेख है। इसके अनुसार न्यायाधीशों को केवल दो आधारों-कदाचार या असमर्थता पर ही पदच्युत किया जा सकता है। न्यायाधीशों के द्वारा कदाचार या असमर्थता को साबित किया जाना आवश्यक है। इसका अन्वेषण करने और इसे साबित करने की प्रक्रिया का निर्धारण संसद कानून द्वारा करती है।

न्यायाधीशों को पद से हटाने के लिए समावेदन किसी भी सदन में पहले प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसा समावेदन प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा सदन में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित होना चाहिए (विशेष बहुमत)। तत्पश्चात् यह समावेदन संसद के उसी सत्र में राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाता है और राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने का आदेश देता है।

तालिका 15.1: भारत के मुख्य न्यायाधीश

नाम	कार्यकाल	नाम	कार्यकाल
1. हीरालाल जे. कानिया	1950-1951	2. एम. पतंजलि शास्त्री	1951-1954
3. महेन्द्र चंद महाजन	1954 (5 जनवरी-22 दिसम्बर)	4. बी. के. मुखर्जी	1954-1956
5. एस. आर. दास	1956-1959	6. भुवनेश्वर प्रसाद सिन्हा	1959-1964
7. पी. बी. गजेन्द्र गडकर	1964-1966	8. ए. के. सरकार	1966 (16 मार्च- 29 जून)
9. के. सुब्बाराव	1966-1967	10. के. एन. वांचू	1967-1968
11. एम. हिदायतुल्ला	1968-1970	12. जे. सी. शाह	1970-1971
13. एम. एम. सिकरी	1971-1973	14. अजीत नाथ राय	1973-1977
15. एम. एच. बेग	1977-1978	16. यशवंत विष्णु चन्द्रचूड़	1978-1985
17. पी. एन. भगवती	1985-1986	18. रघुनंदन स्वरूप पाठक	1986-1989
19. ई. एस. वेंकटरमैया	1989	20. सव्यसाची मुखर्जी	1989-1990
21. रंगनाथ मिश्र	1990-1991	22. के. एन. सिंह	1991
23. एम. एच. कानिया	1991-1992	24. ललित मोहन शर्मा	1992-1993
25. एम. एन. वेंकटचलैया	1993-1994	26. ए. एम. अहमदी	1994-1997
27. जगदीश प्रसाद वर्मा	1997-1998	28. मदन मोहन पुंछी	1998-1998 (18 जनवरी-9 अक्टूबर)
29. ए. एस. आनंद	1998-2001	30. एस. पी. भरूचा	2001-2002
31. बी. एन. कृपाल	2002-2002 (6 मई- 8 नवम्बर)	32. जी. बी. पटनायक	2002-2002 (8 नवम्बर-19 दिसम्बर)
33. वी. एन. खरे	2002-2004	34. एस. राजेंद्र बाबू	2004-2004 (2 मई-1 जून)
35. आर. सी. लाहोटी	2004-2005	36. वाई. के. सभ्भरवाल	2005-2007
37. के. जी. बालकृष्णन	2007-2010	38. सरोष होमी कपाड़िया	2010-2012
39. अल्तमस कबीर	2012-2013	40. पी. सदाशिवम	2013-2014
41. आर. एस. लोढ़ा	2014-2014	42. एच. एल. दत्तू	2014-2015
43. टी. एस. ठाकुर	2015-2017	44. जगदीश सिंह खेहर	2017-2017 (4 जनवरी-27 अगस्त)
45. दीपक मिश्रा	2017 से अबतक		

न्यायाधीशों को हटाया जाना

ऐसे किसी प्रस्ताव को संसद में रखने तथा न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की जाँच और साबित करने के लिए, प्रक्रिया विहित करने की शक्ति संसद को दी गई है, अनु. 124(5) संसद ने इस शक्ति के प्रयोग में न्यायाधीश (जाँच) अधिनयम 1968 बनाया है, जिसके अनुसार किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए एक प्रस्ताव, राष्ट्रपति को सम्बोधित कर लाया जाता है। प्रस्ताव यदि लोकसभा में लाया जाता है तो कम से कम 100 सदस्यों द्वारा तथा यदि राज्यसभा में लाया जाता है तो कम से कम 50 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति प्रस्ताव को ग्रहण करने या न करने का निर्णय करता है। प्रस्ताव ग्रहण किये जाने पर एक तीन सदस्यीय समिति (जिसमें एक उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश, एक किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश तथा एक प्रसिद्ध न्यायविद् होते हैं) आरोप की जाँच के लिए गठित की जाती है। यदि समिति अपनी रिपोर्ट में आरोप की पुष्टि करती है तो ऐसी रिपोर्ट और न्यायाधीश को हटाये जाने का प्रस्ताव उस सदन में रखा जाता है, जिसमें कार्यवाही लम्बित है। एक सदन द्वारा प्रस्ताव पारित कर दिये जाने पर दूसरे सदन को भेजा जाता है। दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित प्रस्ताव राष्ट्रपति के समक्ष आदेश के लिए रखा जाता है, और तब राष्ट्रपति आरोपित न्यायाधीश को हटाने का आदेश देता है। उल्लेखनीय है कि अभी तक उच्चतम न्यायालय के एक भी न्यायाधीश को उसके पद से हटाया नहीं गया है, यद्यपि हटाने की प्रक्रिया अधोलिखित तीन न्यायाधीशों के विरुद्ध प्रारंभ की गई थी। यथा:

न्यायाधीश वी. रामास्वामी का मामला–न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी उच्चतम न्यायालय के ऐसे प्रथम न्यायाधीश हैं जिनको हटाने के लिए 1991 में लोकसभा में प्रस्ताव लाया गया था। रामास्वामी पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहने के दौरान वित्तीय अनियमितता का आरोप था। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी.बी. सावंत की अध्यक्षता में (अन्य सदस्य थे न्यायाधीश वी.डी. देसाई तथा न्यायाधीश ओ.पी. चिनप्पा रेड्डी) गठित समिति ने आरोप को सही पाया था, परंतु लोकसभा में 10–11 मई 1993 को हुए मतदान में सत्ताधारी कांग्रेस द्वारा भाग न लेने के कारण प्रस्ताव पारित न हो सका। यद्यपि प्रस्ताव के पक्ष में 176 मत (विपक्ष में एक भी मत नहीं) पड़ा था।

सौमित्र सेन का मामला–कोलकाता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सेन भारत के ऐसे दूसरे न्यायाधीश हैं जिनको हटाने के लिए प्रस्ताव अगस्त 2011 में राज्यसभा द्वारा पारित किया गया, किंतु लोकसभा में प्रस्ताव पेश किये जाने के पूर्व ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया, जिसके कारण यह प्रकरण वहीं समाप्त हो गया। राज्यसभा की तीन सदस्यीय समिति ने अपनी रिपोर्ट में श्री सेन को दोषी पाया था।

पी.डी. दिनाकरन का मामला–सिक्किम उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति पाल डैनिथल दिनाकरण के विरुद्ध भी 'कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहने के दौरान वित्तीय अनियमितता का आरोप लगाया गया था। श्री दिनाकरन ने 29 जुलाई 2010 को राज्यसभा में महाभियोग की कार्यवाही प्रारंभ होने के पूर्व ही अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। अत: उनके विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही प्रारंभ नहीं हो सकी।

उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of Supreme Court)

विश्व के अन्य किसी भी न्यायालय की तुलना में भारत के सर्वोच्च न्यायालय को व्यापक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से विवेचन किया जा सकता है:

अभिलेख न्यायालय (Court of Record)

संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय है और उसे ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं। इस रूप में देश की इस सर्वोच्च न्यायिक पीठ की समस्त कार्यवाहियों, निर्णयों, न्यायादेशों आदि के अभिलेख रखे जाते हैं ताकि कानून की व्याख्या में उन्हें भविष्य में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इन अभिलेखों की प्रामाणिकता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

अभिलेख न्यायालय का तात्पर्य ऐसे न्यायालय से होता है, जिसके निर्णय और कार्यवाहियाँ लिखी जाती हैं। भविष्य में इन्हें किसी भी न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती है और न ही इसकी वैधता पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व साक्ष्यात्मक मूल्य है।

प्रारंभिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

अनुच्छेद 131 के अनुसार उच्चतम न्यायालय को कुछ मामलों में अनन्य प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत ऐसे मामले आते हैं, जिनकी सुनवाई करने का अधिकार किसी उच्च न्यायालय अथवा अधीनस्थ न्यायालयों को नहीं होता है। उच्चतम न्यायालयों को निम्नलिखित मामलों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार होता है:

1. भारत संघ तथा एक या एक से अधिक राज्यों के मध्य उत्पन्न होनेवाले विवादों में,
2. भारत संघ तथा कोई एक राज्य या अनेक राज्यों और एक से अधिक राज्यों के बीच विवादों में,
3. दो या दो से अधिक राज्यों के बीच ऐसे विवाद में जिसमें उनके वैधानिक अधिकारों का प्रश्न निहित हो।

प्रारंभिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय उसी विवाद को निर्णय के लिए स्वीकार करेगा, जिसमें किसी तथ्य या विधि का प्रश्न शामिल हैं। लेकिन नदी जल विवाद प्रारंभिक क्षेत्राधिकार में नहीं आता इसके लिए संविधान में अनु. 262 की व्यवस्था है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)

देश के सबसे बड़े अपीलीय न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय को उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद 132 से अनुच्छेद 136 में वर्णित अपीलीय क्षेत्राधिकार के आधार पर अपीलीय अधिकारिता को अग्रांकित चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है:

संवैधानिक मामले (Consitutional Matters)

संवैधानिक मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णय, डिक्री तथा अंतिम आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में तभी अपील की जा सकती है जब संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित विधि के किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर अनेक उच्च न्यायालयों ने भिन्न–भिन्न निर्णय दिये हों। संवैधानिक मामलों में अपील तभी की जा सकती है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे दे कि मामलों में विधि का जटिल प्रश्न अंतर्निहित है, जिसके लिए संविधान की व्याख्या आवश्यक है। उच्च न्यायालय प्रमाण पत्र न दे, तब उच्चतम न्यायालय इस सम्बन्ध में स्वयं अपील करने की आज्ञा दे सकता है। संवैधानिक मामलों में की गयी अपील की सुनवाई के लिए संवैधानिक पीठ का गठन किया जाता है। संवैधानिक पीठ में न्यूनतम 5 न्यायाधीश होते हैं अभी तक केशवानंद भारती वाद (1973) में सबसे बड़ी पीठ का गठन किया जा चुका है।

दीवानी मामले (Civil Matters)

संविधान के अनुच्छेद 133 के अनुसार उच्चतम न्यायालय को दीवानी अपीलीय अधिकार प्राप्त हैं। दीवानी मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील तभी की जा सकती है, जब उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि:

1. मामलों में विधि या सार्वजनिक महत्त्व का कोई सारभूत प्रश्न शामिल है,

2. मामले का निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक तथा
3. संविधान के 30वें संशोधन अधिनियम 1972 द्वारा अनुच्छेद 133 में उक्त उपबन्ध जोड़े गये हैं। किंतु उच्च न्यायालय के प्रमाण पत्र मिल जाने पर भी सर्वोच्च न्यायालय अपील सुनने को बाध्य नहीं है तथा वह ऐसे प्रमाण पत्र को रद्द कर सकता है।

फौजदारी मामले (Criminal Matters)

अनुच्छेद 134 के अनुसार फौजदारी मामलों में उच्चतम न्यायालय में तभी अपील की जा सकती है, यदि:

1. उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त को दोष मुक्ति के आदेश की परिवर्तित कर इसे मृत्युदण्ड दिया है,
2. किसी उच्च न्यायालय ने अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत किसी अधीनस्थ न्यायालय से लंबित वाद को परीक्षण के लिए अपने पास अंतरित कर लिया है और अभियुक्त को दोषी करार देकर मृत्युदण्ड दिया हो, तथा
3. उच्चतम न्यायालय प्रमाणित कर देता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने योग्य है।

उल्लेखनीय है कि फौजदारी अथवा दाण्डिक विषयों में अपील का प्रमाण पत्र देने का अधिकार उच्च न्यायालय का विशेषाधिकार है, किंतु उच्च न्यायालय अपने विशेषाधिकार का मनमाना प्रयोग नहीं कर सकता है। उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि उच्च न्यायालय को केवल असाधारण परिस्थितियों में ही, जहाँ न्याय इसकी अपेक्षा करता है, हस्तक्षेप करना चाहिए।

विशिष्ट पुनर्विचार (Special Review)

अनुच्छेद 136 के अनुसार उच्चतम न्यायालय अपने विवेकानुसार भारत के किसी न्यायालय या अभिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में पारित किये गए या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री, अवधारण, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध अपील के लिए विशेष इजाजत दे सकता है। इसके खण्ड (2) में इसका अपवाद है। इसे सशस्त्र बलों से सम्बद्ध किसी विधि के अधीन गठित किसी न्यायालय के निर्णय आदि से अपील की विशेष इजाजत नहीं दी जा सकती है।

44वें संविधान संशोधन द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील के लिए विशेष अनुमति के अधिकार को अब संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा नियमित किया जाएगा। इस संशोधन के पश्चात् समान प्रकृति के वाद को किसी पक्ष या व्यक्त द्वारा उच्चतम न्यायालय में उपस्थित किया जा सकेगा। इससे पूर्व महान्यायवादी के आवेदन पर ही उच्चतम न्यायालय कार्यवाही कर सकता था। अब उच्चतम न्यायालय महान्यायवादी या किसी पक्ष के आवेदन से संतुष्ट है कि किसी वाद या वादों में एक ही कानून अंतर्निहित है और वह किसी उच्च न्यायालय या न्यायालयों में विचाराधीन है, तो उसे अपने यहाँ मंगाकर निर्णय कर सकता है। स्पष्ट है कि अनुच्छेद 136 उच्चतम न्यायालय को विस्तृत शक्ति प्रदन करता है।

परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)

संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि जब उसे यह प्रतीत हो कि विधि या तथ्य का कोई प्रश्न उत्पन्न हो गया हे या उत्पन्न होने की संभावना है, जो ऐसी प्रकृति का है या ऐसे व्यापक महत्त्व का है कि उस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना आवश्यक है तो वह उस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की राय मांग सकता है। उच्चतम न्यायालय मामले की सुनवाई कर उस पर अपनी राय दे सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय न तो राष्ट्रपति को राय देने के लिए बाध्य है, और न ही राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गयी राय को मानने के लिए बाध्य है। लेकिन व्यवहार में उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक स्थिति को देखते हुए सलाह को स्वीकार कर लेता है। न्यायाधीशों की नियुक्ति का मामला, लाभ से सम्बन्धित पद के मामलों में उच्चतम न्यायालय निर्देश दे सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां (Powers of the Supreme Court)

अवमानना एवं मानहानि के लिए दंडित करना

उच्चतम न्यायालय अपनी कार्यवाही को बाधित करने वाले, उसकी दुराग्रहपूर्ण निंदा करने वाले, मानहानिपूर्ण कृत्यों के लिए दोषी व्यक्ति या संस्था को दंडित करने के व्यापक अधिकार से सम्पन्न है। भारत के राज्य क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति, समूह या संस्था उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की अवज्ञा एवं निंदा नहीं कर सकता है, ऐसा होने पर न्यायालय उसको मानहानि के लिए दण्ड दे सकता है।

उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का बंधनकारी स्वरूप

अनुच्छेद 141 के अनुसार उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर बंधनकारी होगी। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को अधीनस्थ न्यायालयों में पूर्व निर्णय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा अधीनस्थ न्यायालय उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार करने के लिए बाध्य होते हैं। परंतु यह बाध्यता स्वयं उच्चतम न्यायालय के लिए नहीं है।

एकीकृत न्याय प्रणाली का संचालन

उच्चतम न्यायालय भारतीय संविधान का संरक्षक है। यद्यपि संविधान द्वारा लिखित रूप में संघ एवं राज्यों के मध्य, सरकार के तीनों अंगों के मध्य तथा व्यक्ति एवं राज्यसत्ता के मध्य संबंधों का निरूपण कर दिया गया है। किंतु व्यवहार में संभव है कि इनमें से किसी भी पक्ष द्वारा अपनी संवैधानिक स्थिति का अतिक्रमण किया जाए। ऐसे में उच्चतम न्यायालय की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वह संविधान की व्याख्या करता है तथा उसके अनुरूप सभी पक्षों को अपनी संवैधानिक मर्यादा में रहने के लिए 'न्यायिक पुनरावलोकन' की शक्ति के आधार पर बाध्य भी करता है।

संघ-राज्य संबंधों में निर्णायक की भूमिका (Role of Decision-maker in Union-state Relations)

भारत की संघात्मक प्रणाली में संघ एवं राज्यों के मध्य विवादों के समाधान का दायित्व संविधान के केवल उच्चतम न्यायालय पर डाला है। यद्यपि संविधान के अंतर्गत दोनों के कार्यक्षेत्रों का सीमांकन स्पष्ट है, तथापि इनमें परस्पर विवाद उत्पन्न हो सकता है। ऐसा विवाद कभी भी संघीय प्रणाली को संकटग्रस्त बना सकता है। इसलिए उच्चतम न्यायालय को संघ-राज्य संबंधों में निर्णायक की भूमिका सौंपी गई है।

संविधान का संरक्षक (Custodian of the Constitution)

उच्चतम न्यायालय भारतीय संविधान का संरक्षक है। यद्यपि संविधान लिखित रूप में संघ एवं राज्यों के मध्य, सरकार के तीनों अंगों के मध्य तथा व्यक्ति एवं राज्यसत्ता के मध्य संबंधों का निरूपण कर दिया गया है। किंतु व्यवहार में सम्भव है कि इनमें से किसी भी पक्ष द्वारा अपनी संवैधानिक स्थिति का अतिक्रमण किया जाए। ऐसे में उच्चतम न्यायालय की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

मूल अधिकारों का रक्षक (Protector of Fundamental Rights)

भारतीय संविधान के भाग तीन द्वारा भारत के नागरिकों को प्रदत्त मूल अधिकारों की रक्षा का दायित्व अनुच्छेद 32 एवं 13 के द्वारा उच्चतम न्यायालय पर डाला गया है। अनुच्छेद-32 के अनुसार कोई नागरिक अपने मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उच्चतम न्यायालय में सीधे याचिका दायर कर सकता है।

उच्चतम न्यायालय की अन्य शक्तियाँ

उपरोक्त के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय की कुछ अन्य शक्तियाँ भी हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है। यथा:

- अनु. 135 के तहत उच्चतम न्यायालय को संघीय न्यायालय द्वारा प्रयोगतव्य शक्तियों और अधिकारिता को प्रयोग करने की शक्ति दी गई है। इसके अनुसार ऐसे मामले जो अनु. 133 (सिविल मामलों में अपील) या अनु. 134 (आपराधिक मामलों में अपील) की परिधि में नहीं आते हैं, किंतु जिसके सम्बन्ध में सघीय न्यायालय, संविधान लागू होने के पूर्व, अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करता था, उसके सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को भी अधिकारिता व शक्तियाँ होंगी। उल्लेखनीय है कि संघीय न्यायालय से तात्पर्य भारत सरकार अधिनियम 1935 के अधीन गठित संघीय न्यायालय से है।
- अनु. 138 के तह संसद, उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता में वृद्धि कर सकती है। इसके अनुसार उच्चतम न्यायालय को संघसूची के विषयों में से किसी के सम्बन्ध में ऐसी अतिरिक्त अधिकारिता और शक्तियाँ होंगी जो संसद विधि द्वारा उसे प्रदान करे।
- अनु. 139 उच्चतम न्यायालय की रिट जारी करने की शक्ति की वृद्धि के बारे में है। उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय को अनु. 32 के तहत केवल मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए रिट जारी करने की शक्ति है जबकि उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों सहित 'किन्हीं प्रयोजनों के लिए' रिट जारी करने की शक्ति है। अनु. 139 के अनुसार संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को भी किन्हीं प्रयोजनों के लिए रिट (बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार पृच्छा) जारी करने की शक्ति प्रदान कर सकती है।
- उच्चतम न्यायालय की आनुषंगिक शक्तियाँ अनु. 140 में दी गयी हैं। इसके अनुसार संसद उच्चतम न्यायालय को ऐसी आनुषंगिक शक्तियाँ प्रदान कर सकती हैं जो संविधान द्वारा उसे प्रदत्त अधिकारिता को अधिक प्रभावी प्रयोग करने के लिए आवश्यक या वांछनीय प्रतीत हो।
- अनु. 142 के तहत उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह अपनी अधिकारिता के प्रयोग में अपने समक्ष लम्बित किसी वाद या विषय में ऐसी डिक्री या आदेश पारित कर सकता है जो पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो। उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति भी दी गई है कि वह पूरे भारत में किसी व्यक्ति को हाजिर कराने, किसी दस्तावेज को पेश कराने या अपने अवमान के लिए दण्ड देने के प्रयोजन से भी कोई आदेश दे सकता है।
- संविधान के अनु. 144 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र के 'सभी सिविल और न्यायिक प्राधिकारी' उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।
- अनु. 145 उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति के अनुमोदन से न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है।
- इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय विधि व्यवसाय करने, अपीलों को सुनने, मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने, कार्यवाहियों को अंतरण, पुनरावलोकन, न्यायालय के आनुषंगिक खर्चे और फीसों, जमानत मंजूर करने, कार्यवाहियों को रोकने तथा कुछ मामलों में अपीलों के संक्षिप्त अवधारण आदि के बारे में नियम बनाये जा सकते हैं। इसके अधीन बनाये गये नियमों द्वारा किसी पीठ में बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या तथा एकल न्यायाधीशों और खण्ड न्यायालयों की शक्ति के बारे में उपबन्ध किया जा सकता है।

उच्च न्यायालय (High Court)

संविधान के अनुच्छेद 214 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा, लेकिन संसद विधि द्वारा दो या अधिक राज्यों के लिए अथवा दो या अधिक राज्यों और किसी संघ राज्य क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है।

न्यायाधीश पद की योग्यता

अनुच्छेद 217 के अनुसार किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्ति होने के लिए व्यक्ति में निम्नलिखित अर्हताएँ होनी चाहिए:

- वह भारत का नागरिक हो।
- भारत राज्य-क्षेत्र में कम से कम 10 वर्ष तक कोई न्यायिक पद ग्रहण कर चुका हो।
- उच्च न्यायालय में कम से कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

अनुच्छेद 217 के अधीन 'न्यायिक पद' धारण करने वाले से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो न्यायिक कार्य करता है, पक्षकारों के बीच मामलों का विनिश्चय करता है। उसे कार्यपालिका से पृथक होना चाहिए।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति और राज्य के राज्यपाल के परामर्श से करता है। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय वह उक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 237 में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी प्रावधान अधिकाधिक हैं।

6 अक्टूबर 1993 को उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गए निर्णय के अनुसार राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय को वरीयता देते हुए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करेगा। 1999 में उच्चतम न्यायालय के 9 सदस्यीय संविधान पीठ ने यह निर्धारित किया है कि उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में उच्चतम न्यायालय के केवल 2 वरिष्ठतम न्यायाधीशों का परामर्श लेना आवश्यक है, किंतु स्थानांतरण के मामलों में उच्चतम न्यायालय के 4 वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श को अनिवार्य बनाया गया है।

साथ ही संबंधित उच्च न्यायालयों, जिससे स्थानांतरण किया गया है और जहाँ स्थानांतरण किया जाना है, के मुख्य न्यायाधीशों से परामर्श करना भी अनिवार्य होगा। इस प्रकार वर्तमान में नियुक्ति तथा स्थानांतरण कोलेजियम की सलाह से ही होता है, लेकिन सम्बंधित राज्य के राज्यपाल तथा मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लिया जाता है।

कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति

अनुच्छेद 223 के अनुसार जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो या जब मुख्य न्यायाधीश की अनुपस्थिति के कारण या अन्यथा अपने पद के कर्त्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो तब राष्ट्रपति न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से किसी को मुख्य न्यायाधीश के कार्यों का निर्वहन करने के लिए कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।

अपर तथा कार्यकारी न्यायाधीश

अनुच्छेद 224 के अनुसार जब किसी उच्च न्यायालय में कार्य की अस्थायी वृद्धि हो जाये और राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि कार्य निपटाने के लिए और अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता है, तब राष्ट्रपति न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किये जाने के लिए योग्य किसी व्यक्ति को 2 वर्ष तक की अवधि के लिए अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकता है।

जब उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अपने पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो जाता है या अपनी अनुपस्थिति के कारण अपने पद के कर्त्तव्य का निर्वहन नहीं कर पाता, तब राष्ट्रपति न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के योग्य किसी व्यक्ति को कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकता है।

पदावधि

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की पदावधि तक अपना पद धारण कर सकते हैं। संविधान के 15वें संशोधन (1963) द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष की गयी है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश किसी भी समय राष्ट्रपति को अपने पद का त्याग कर सकता है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए निर्धारित महाभियोग प्रक्रिया के समान ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भी साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर संसद के दोनों सदनों द्वारा (सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा उपस्थित सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से समर्थित) समावेदन पर राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकेगा।

न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्तों को निर्धारित करने की शक्ति संसद को दी गयी है। न्यायाधीशों के वेतन राज्य की संचित निधि से तथा पेंशन केन्द्र की संचित निधि से दिया जाता है और उनमें नियुक्ति के पश्चात् कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। वर्तमान समय में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को 80 हजार रुपए प्रतिमाह और मुख्य न्यायाधीश को 90 हजार रुपए प्रतिमाह वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्हें कई प्रकार के भत्त तथा सेवा निवृत्ति के पश्चात् पेंशन भी दी जाती है।

उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालयों को निम्नलिखित क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं:

1. **अपीलीय क्षेत्राधिकार**—उच्च न्यायालयों को अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों के निर्णयों, आदेशों तथा डिक्रियों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है।
2. **प्रारंभिक क्षेत्राधिकार**—अनुच्छेद 226 के अनुसार उच्च न्यायालय को राजस्व संग्रह के सम्बन्ध में तथा मूल अधिकारों के उल्लंघन के सम्बन्ध में प्रारंभिक क्षेत्राधिकार है।
3. **अन्तरण सम्बन्धी अधिकार**—अनुच्छेद 228 के अनुसार, यदि उच्च न्यायालय को समाधान हो जाये कि उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय में लम्बित मामले में संविधान की व्याख्या के बारे में कई प्रश्न विचाराधीन हैं, जिसका उस मामले से सम्बन्ध है, तो वह उस मामले को अपने पास भेजने का आदेश देता है और मामले पर

निर्णय कर सकता है। अनुच्छेद 228 के अनुसार उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय में लम्बित वाद का किसी अन्य अधीनस्थ न्यायालय को अंतरित कर सकता है।

4. **लेख जारी करने का अधिकार**—अनुच्छेद 226 के अनुसार उच्च न्यायालय मूल अधिकारों के उल्लंघन करने के सम्बन्ध में बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार रिटें जारी कर सकता है। साथ ही अन्य संदर्भों कानूनी अधिकार, संवैधानिक अधिकार के संदर्भ में रिट जारी कर सकता है। इस तरह न्यायालय की रिट अधिकारिता, उच्चतम न्यायालय से व्यापक है।

5. **अधीक्षण क्षेत्राधिकार**—अनुच्छेद 227 के अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपनी अधिकारिता के अधीन स्थित सभी न्यायालयों तथा अधिकरणों की अधीक्षण शक्ति है, जिसके प्रयोग से वह ऐसे न्यायालयों/अधिकरणों से विवरण मंगा सकता है। ऐसे न्यायालयों/अधिकारों के शुल्कों को नियत कर सकता है। ऐसे न्यायालयों, अधिकरणों के अधिकारियों द्वारा रखी जाने वाली प्रविष्टियों एवं लेखाओं के प्रारूप निश्चित करता है तथा अधीनस्थ न्यायालय के कार्यों की जांच करता है।

तालिका 15.2: सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयः तुलनात्मक अध्ययन

सर्वोच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय
• सर्वोच्च न्यायालय देश का सबसे बड़ा न्यायालय है। इसके संबंध में प्रावधान संविधान के भाग 5, अनु. (124.147) में दिया गया है।	• उच्च न्यायालय राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय है। इसके सम्बन्ध में प्रावधान भाग-6, अनु. (214-232) में दिया गया है।
• पूरे देश के लिए सर्वोच्च न्यायालय का प्रावधान है। जो दिल्ली में स्थित है किंतु वह अपनी बैठक किसी अन्य स्थान पर भी कर सकता है।	• प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय का प्रावधान है, किंतु संसद दो या अधिक राज्यों के लिए अथवा दो या अधिक राज्यों और किसी संघ शासित राज्य के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है।
• सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।	• उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
• सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या निश्चित है, जो वर्तमान में मुख्य न्यायाधीश सहित 31 है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि का अधिकार संसद को है।	• उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नहीं है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा बढ़ायी जा सकती है।
• सर्वोच्च न्यायालय को अनु. 129 अभिलेख न्यायालय घोषित करता है।	• उच्च न्यायालय को अनु. 215 के तहत अभिलेख न्यायालय घोषित किया गया है।
• सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् अवकाश ग्रहण करते हैं।	• उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति होने की आयु 62 वर्ष है।
• सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय में दिए गए निर्णयों को मानने को बाध्य नहीं है।	• उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को मानने के लिए बाध्य है (अनु. 141)।
• सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन भत्ते पेंशन आदि भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं (अनु. 112(3)।	• उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन-भत्त राज्य की संचित निधि पर तथा पेंशन भारत की संचित निधि पर भारित होता है।
• सर्वोच्च न्यायालय को अनु. 32 के अधीन सिर्फ मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए रिट जारी करने की शक्ति है।	• उच्च न्यायालयों को अनु. 226 के अधीन मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए तथा किन्हीं अन्य प्रयोजनों के लिए भी रिट जारी करने की शक्ति है।
• अनु. 127 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान है।	• उच्च न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान नहीं है।
• सर्वोच्च न्यायालय में अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान नहीं है।	• अनु. 224 के तहत उच्च न्यायालय में 2 वर्ष के लिए अपर न्यायाधीश नियुक्त किये जाने का प्रावधान है।
• राष्ट्रपति द्वारा किसी सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय से राय मांगे जाने पर वह अनु. 143 के तहत उसे अपनी राय देता है।	• उच्च न्यायालयों को परामर्शी क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है।

अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Court)

उच्च न्यायालयों के अधीन तथा उसके नियंत्रण में कार्य करने वाले न्यायालयों को संविधान द्वारा अधीनस्थ न्यायालय कहा गया है। अधीनस्थ न्यायालय संबंधी प्रावधान संविधान के भाग 6 के अध्याय-6, अनु. 233.237 में दिया गया है। यद्यपि भारत के अलग-अलग राज्यों में अधीनस्थ न्यायालयों के अलग-अलग नाम तथा स्तर हैं किंतु इनका गठन तथा कार्यप्रणाली पूरे देश में लगभग एक समान है। अधीनस्थ न्यायालय जिला-स्तर का न्यायालय होता है, अत: इसे जिला न्यायालय भी कहा जाता है। यह जिले का सबसे बड़ा न्यायालय होता है। जिला न्यायालय को दो वर्गों, यथा- दीवानी न्यायाल तथा आपराधिक न्यायालय में बाँटा जा सकता है। दीवानी न्यायालय में दीवानी मामले तथा आपराधिक (फौजदारी) न्यायालय में आपराधिक मामले सुने जाते हैं।

जिला न्यायालय का प्रधान जिला न्यायाधीश होता है। वह जिले का सबसे बड़ा न्यायिक अधिकारी होता है। जिला न्यायाधीश दीवानी तथा आपराधिक दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई करता है। जब वह दीवानी मामलों को सुनता है तब उसे जिला जज तथा आपराधिक मामलों को सुनता है तब सत्र न्यायाधीश कहा जाता है। इसीलिए इसे जिला एवं सत्र न्यायाधीश भी कहा जाता है।

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में प्रावधान अनु. 233 में दिया गया है। इसमें कहा गया है कि किसी राज्य में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति, पदस्थापन तथा प्रोन्नति उस राज्य के राज्यपाल द्वारा उस राज्य के उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् किया जायेगा। कोई व्यक्ति जिला न्यायाधीश के रूप में कार्य किया हो और उसकी नियुक्ति की उच्च न्यायालय ने सिफारिश किया हो।

उल्लेखनीय है कि जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के दो तरीके हैं—(1) सेवारत व्यक्तियों में से नियुक्ति तथा (2) अधिवक्ताओं की सीधी भर्ती। प्रथम वर्ग में संघ या राज्य की न्यायिक सेवा में कार्यरत व्यक्ति आते हैं, जबकि दूसरे वर्ग में अधिवक्ता के रूप में 7 वर्ष तक अनुभव रखने वाले व्यक्ति आते हैं।

जिला न्यायाधीश को किसी भी मूल्य के सिविल मामलों की सुनवाई की आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है। उसे अपीलीय (5 लाख तक) तथा पुनरीक्षण (1 लाख तक) की अधिकारिता भी है। आपधारिक मामलों में भी उसे आरंभिक तथा अपीलीय दोनों प्रकार की अधिकारिता प्राप्त है। सत्र न्यायाधीश कोई भी दण्ड दे सकता है किंतु उसके द्वारा दिये गये मृत्यु दण्ड की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि आवश्यक होती है।

जिला न्यायाधीश के नीचे सिविल मामलों की सुनवाई के लिए सिविल जज (सीनियर डिवीजन) तथा सिविल जज (जूनियर डिवीजन) का न्यायालय होता है। सिविल जज (सीडी) को भी किसी भी मूल्य के सिविल मामलों की सुनवाई का आरंभिक अधिकार है। वह 1 लाख तक के मूल्य के मामले में भी अपील सुन सकता है। सिविल जज (जूडी) को पहले मुंसिफ न्यायालय के नाम से जाना जाता था। इसे 1 लाख मूल्य तक के दीवानी मामले को सुनने का अधिकार है किंतु इसे अपील सुनने का अधिकार नहीं है।

सत्र न्यायाधीश के नीचे आपराधिक मामलों की सुनवाई के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी तथा न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी का न्यायालय 7 वर्ष तक का कारावास तथा कोई भी जुर्माना दे सकता है, जबकि न्यायिक मजिस्टेट (प्रथम श्रेणी) को 3 वर्ष तक का कारवास तथा 10 हजार रु. जुर्माना या दोनों देने का अधिकार होता है। न्यायिक मजिस्ट्रेट (द्वितीय श्रेणी) 1 वर्ष तक का कारावास तथा 5000 रु. का जुर्माना या दोनों प्रकार का दण्ड दे सकता है।

जिला न्यायाधीश के नीचे राज्य के सिविल न्यायिक पदों पर भर्ती के सम्बन्ध में प्रावधान अनु. 234 के तहत दिया गया है। इसमें कहा गया है कि जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की किसी राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल द्वारा, राज्य लोक सेवा आयोग से तथा उस राज्य के उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् राज्यपाल द्वारा इस निमित्त बनाये गये नियमों के अनुसार की जायेगी।

जिला न्यायालयों तथा उसके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण का अधिकार उच्च न्यायालय में निहित है। अत: जिला न्यायाधीश तथा उसके न्यायिक पदाधिकारियों के विरुद्ध उच्च न्यायालय को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का अधिकार है। किसी राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों और जिला न्यायाधीश के पद से अगर किसी पद को धारण करने वाले व्यक्तियों की पदस्थापना, प्रोन्नति और उनको छुट्टी देने का अधिकार भी उच्च न्यायालय को है (अनु. 235)।

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की भाँति ही जिला न्यायालयों को भी स्वतंत्र रखने के लिए संविधान में प्रावधान किये गये हैं—जो निम्नलिखित हैं:

- जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, तैनाती तथा पदोन्नति राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय के परामर्श करके की जायेगी (अनु. 233)।
- जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की किसी राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग तथा सम्बद्ध उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् और राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार की जायेगी (अनु. 235)।
- जिला न्यायाधीशों तथा उनके न्यायिक पदाधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का अधिकार उच्च न्यायालय को है।

राजस्व न्यायालय (Revenue Court)

राज्यों के भू-राजस्व के सम्बन्ध में राज्य स्तर पर पृथक न्याय प्रणाली का प्रावधान किया गया है, जिसमें सबसे उपरी स्तर पर 'राजस्व मण्डल' तथा सबसे नीचे के स्तर पर 'तहसीलदार' का न्यायालय होता है। इसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैं:

1. **राजस्व मण्डल—** प्रत्येक राज्य में एक राजस्व मण्डल होता है जो राजस्व सम्बन्धी विवादों का निर्णय करने के लिए सबसे बड़ी अदालत है। उसके निर्णय की अपील राज्य के उच्च न्यायालय में की जा सकती है।
2. **कमिश्नर या आयुक्त—** भू-राजस्व या मालगुजारी सम्बन्धी कार्य के लिए राज्य को कई कमिश्नरियों में विभक्त कर दिया

तालिका 15.3: सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, जिला न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयः एक झलक में

आधार	सर्वोच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय	जिला न्यायालय	अधीनस्थ न्यायालय
अधिकतम सदस्य	31 (30 न्यायाधीश + 1 मुख्य न्यायाधीश)	जितना राष्ट्रपति निश्चित करें।	प्रत्येक जिले मे एक	प्रत्येक जिले मे अनेक स्तर
योग्यता	हाई कोर्ट में 10 वर्ष तक अधिवक्ता या 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो। या राष्ट्रपति की राय में विधिवेत्ता हो	भारत का नागारिक हो। राज्य के उच्च न्यायालय में 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो। या 10 वर्षों तक किसी न्यायालय में न्यायाधीश रहा हो।	7 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।	राज्य न्यायिक सेवा की परीक्षा पास कर आया हो।
नियुक्ति प्रक्रिया	सर्वोच्च न्यायालय की परिषद के सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा	सर्वोच्च न्यायालय की परिषद के सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा	उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल द्वारा	राज्यपाल द्वारा
आयु	65 वर्ष से अधिक न हो।	62 वर्ष से अधिक न हो।	35 वर्ष से ऊपर हो	21 वर्ष से ऊपर हो
पद से हटाने की प्रक्रिया	महाभियोग जैसी प्रक्रिया	महाभियोग जैसी प्रक्रिया	हाईकोर्ट के सलाह से राज्यपाल द्वारा	हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश
अधिकार क्षेत्र	संपूर्ण भारत वर्ष	एक या एक से अधिक राज्य	जिला क्षेत्र तथा हाईकोर्ट जो कार्य सौपें	जिले के परगना क्षेत्र
प्रमुख विशेषताएं	देश का शीर्ष सर्वोच्च न्यायालय है जो कि एकीकृत न्यायिक प्रणाली पर आधारित है।	इनकी कुल संख्या 24 है। दिल्ली एकमात्र केंद्रशासित प्रदेश है जिसका अपना उच्च न्यायालय है।	प्रत्येक जिले में तीन न्यायालय-दीवानी, फौजदारी और भूराजस्व होते हैं।	प्रत्येक जिले में कई स्तर होते हैं।
एतिहासिक पृष्ठभूमि	1774 ई. में रेगुलेटिंग एक्ट के अंतर्गत कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गयी जिसके मुख्य न्यायाधीश सर एलीजा एम्पे थे।	सर्वप्रथम 1862 ई. में और फिर वर्ष 1956 में कानून बनाकर राज्यों में इसे स्थापित किया गया।	भारतीय संविधान एवं सीआरपीसी के अनुसार गठित	
अनुच्छेद से सम्बन्ध	अनु. 124 के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि भारत का एक उच्चतम न्यायालय हो।	अनु. 124 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा।	भारतीय सविधान के भाग 6 में अनुच्छेद 233 से 237 तक प्रावधान है।	

जाता है और प्रत्येक कमिश्नरी का प्रधान 'कमिश्नर' या आयुक्त कहलाता है। आयुक्त के द्वारा जिलाधीश के फैसले की अपीलें सुनी जाती हैं और आयुक्त की अपीलें 'राजस्व परिषद' में होती है।

3. **जिलाधीश**—मालगुजारी की वसूली के लिए हर जिले में एक जिलाधीश होता है, जो तहसीलदार तथा सब-डिवीजन मजिस्ट्रेट (एसडीएम) के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करता है।
4. **सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट (एसडीएम)**—जिला कई सब-डिवीजन में बंटा होता है और प्रत्येक सब डिवीजन के प्रधान को 'सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट' (उपखण्ड मजिस्ट्रेट) कहते हैं। ये जिलाधीश के अधीन रहते हुए सब-डिवीजन में राजस्व के मामलों की सुनवाई तथा शांति व्यवस्था सम्बन्धी कार्य करते हैं।
5. **तहसीलदार**—सब डिवीजन तहसीलों में बंटा होता है और प्रत्येक तहसील में एक तहसीलदार होता है। इसका प्रमुख कार्य मालगुजारी की वसूली तथा अपनी तहसील में शांति बनाये रखता है। तहसीलदार की सहायता के लिए कई नायब तहसीलदार होते हैं।

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। सामान्यत: जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्य की न्यायिक सेवा के अधिकारियों में से वरिष्ठता तथा योग्यता के आधार पर की जाती है। राज्यपाल, न्यायालय की सिफारिश पर उस व्यक्ति के भी जिला न्यायाधीश के पर नियुक्त कर सकता है, जो क्रम से कम 7 वर्ष तक किसी न्यायालय में लगातार अधिवक्ता रहा हो।

जिला न्याय धीशों के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति दो प्रकार से की जाती है। प्रथम, उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित उच्च न्यायिक सेवा परीक्षण सेवा परीक्षा के परिणाम के आधार पर तथा द्वितीय, राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रांतीय न्यायिक सेवा परीक्षा के परिणाम के आधार पर। प्रत्येक जिलें में तीन प्रकार के न्यायालय होते हैं-

1. **दीवानी (सिविल) न्यायालय**—इन जिला स्तर के न्यायालयों में चल-अचल संपत्ति से संबंधित मामलों की सुनवाई की जाती है।
2. **फौजदारी (आपराधिक) न्यायालय**—इन जिला स्तरीय न्यायालयों में मारपीट, लड़ाई-झगड़े आदि से संबंधित मुकदमों की सुनवाई की जाती है। इनकी सुनवाई करने वाले जिला न्यायाधीश को सत्र न्यायाधीश कहा जाता है।
3. **भू-राजस्व न्यायालय**—इसमें भू एवं लगान संबंधी मामलों की सुनवाई होती है। इसके ऊपरी शाखा राजस्व बोर्ड है, लेकिन इसकी अपील हाई कोर्ट में की जा सकती है।

न्यायिक सुधार (Judicial Reforms)

किसी भी देश की प्रशासनिक पद्धति में न्यायपालिका उसका अनिवार्य अंग होती है। भारत जैसे एक आधुनिक, प्रगतिशील और प्रजातांत्रिक प्रशासिनक ढांचे वाले देश के लिये एक स्वतंत्र और प्रभावकारी न्यायपालिका उसका अनिवार्य अंग होती है, व्यक्तिगत मामलों में न्याय मुहैया कराने के अलावा, न्यायपालिका से उम्मीद की जाती है कि वह संविधान के अभिभावक के रूप में काम करेगी और नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा तथा कानून के शासन को लागू करेगी। यह एक ऐसा साधन है जो अपने नागरिकों को एक सम्मानपूर्ण जिन्दगी जीने का अवसर प्रदान करता है और यह सुनिश्चित करता है कि देश की विधायिका एवं कार्यपालिका दोनों अपनी सीमा में रह कर अपना-अपना काम करेंगे और नागरिकों के मूल अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इन्हीं संदर्भों में न्यायपालिका की जिम्मेदारी है लेकिन पिछले कुछ दशकों से समस्यायें दिखायी दे रही हैं:

- व्यक्तिगत मामलों में न्याय करने का साधन न्यायपालिका है लेकिन अधिसंख्यक आम लोंगों की पहुंच के बाहर है और अर्थहीन बनकर रह गयी है। वकीलों के बिना, गरीब लोगों की पहुंच न्यायालय तक नहीं हो पाती और जो न्यायालय पहुंच पाने की क्षमता रखते हैं उनके मामलों के निष्पादन में इतना विलम्ब होता है कि वे वर्षों न्यायालय के चक्रव्यूह में फंस कर रह जाते हैं और जब फैसले आते हैं तो उनके लिये बेकार और अर्थहीन हो जाते हैं।
- न्यायपालिका में भ्रष्टाचार अब कोई नई बात नहीं रह गयी है। इसका कारण न्यायपालिका में प्राय: पूर्ण पारदर्शिता और उत्तरदायित्व का अभाव है। गाजियाबाद भविष्य-निधि घोटाला, चण्डीगढ़ मामला और जस्टिस सौमित्र सेन विवाद इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।
- लोगों को त्वरित न्याय नहीं मिल पाना भी बड़ी चिन्ता का विषय है। इससे भी न्यायपालिका के प्रभाव में कमी आ रही है।
- न्यायपालिका के समक्ष लम्बित मामलों का अम्बार पड़ा हुआ है। लम्बित मुकदमों की संख्या तीन करोड़ तक पहुंच गयी है, उनमें ज्यादातर मुकदमें अवर न्यायालयों में लम्बित हैं। इसके साथ ही, मुक़दमों के निष्पादन की दर काफी कम है।
- पारदर्शिता और उत्तरदायित्व से संबंधित मुद्दे काफी गंभीर हैं। न्यायाधीश के चयन और बहाली, जो न्यायपालिका अपने लिये करती है और पथभ्रष्ट न्यायाधीशों को दण्डित करने के प्रभावकारी उपायों और साधनों की कमी, गम्भीर चिंता का विषय हैं।

सुधार के सुझाव

- न्यायाधीशों की पर्याप्त संख्या की कमी को दूर करने के लिए आवश्यक है कि उनकी संख्या को बढ़ाया जाए और इसके लिये आवश्यक सहायकों तथा आधारभूत संरचना की व्यवस्था की जाए। न्यायाधीशों की संख्या नागरिकों की संख्या के अनुपात में होनी चाहिये क्योंकि दोनों के अनुपात में काफी अंतर व्याप्त है।
- उत्पादकता बढ़ाने के लिये अच्छी योजना और प्रबंधन की आवश्यकता होती है। नवीनतम सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग से सहायता मिलेगी।
- लोक अदालतों जैसे अल्टरनेटिव डिस्प्यूट रिसोल्यूशन (एडीआर) साधनों को तरजीह देने और हल्के-फुल्के मुकदमों को सुलह सफाई के माध्यम से सुलझाने पर अधिक ध्यान देने से न्यायालयों के बोझ को कम करने में सहायता मिलेगी।
- न्यायिक प्रशिक्षण देकर तथा न्यायाधीश को सक्रिय होने के लिये प्रोत्साहित कर न्यायिक उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। न्यायाधीशों को चाहिये कि उनके समक्ष लाये गये मुक़दमों को त्वरित रूप से एवं समयबद्ध तरीके से निष्पादन में व्यक्तिगत रूचि लें।
- न्यायपालिका और विशेषकर उच्चतर-न्यायपालिका में नियुक्तियों की प्रक्रिया को कारगर बनाना—इसके लिये उत्कृष्ट व्यक्तियों की एक स्वतंत्र कमेटी (जैसे राष्ट्रीय न्यायिक कौंसिल) का गठन कर उसे न्यायाधीशों के चयन का कार्य सौंपना चाहिये।
- यथाशीघ्र एक संवैधानिक न्यायिक आरोप आयोग की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो भ्रष्ट न्यायाधीशों के खिलाफ लगाये गये आरोपों की जांच कर और उनके विरुद्ध कारवाई करे। भ्रष्ट न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग चलाने के संवैधानिक प्रावधान असफल साबित हुए हैं।
- यह आवश्यक है कि न्यायपालिका अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को ठीक से समझ ले और आम आदमी की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के प्रति अधिक संवेदनशील बनने का प्रयास करे। यह आवश्यक है कि वह देश में कानून के शासन और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की रक्षा करे।

न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review)

भारतीय संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि हमारी संसद ब्रिटिश संसद की तरह सर्वोच्च विधि-निर्मात्री संस्था नहीं है और न ही

अमेरिकी संघीय न्यायालय के तरह असीमित अधिकार प्राप्त न्यायिक संस्था। भारतीय संविधान ने अमेरिकी व्यवस्था की न्यायिक सर्वोच्चता और ब्रिटिश सिद्धांत की संसदीय प्रभुता के बीच का रास्ता चुना है। यहाँ न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था अपनायी गयी है।

न्यायिक समीक्षा या न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ है 'वह शक्ति जिसके तहत कार्यपालिका के आदेशों और व्यवस्थापिका के कानूनों की संवैधानिकता की जांच कर सके और असंवैधानिक पाए जाने पर उन्हें अवैध घोषित कर दे'। न्यायिक पुनरावलोकन की अवधारणा अमेरिकी विधि शास्त्र की देन है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन अमेरिकी उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जॉन मार्शन ने 1803 में मारबरी बनाम मेडिसन के मुकदमें में किया था।

भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्सिवलोकन की व्यवस्था अप्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेद 13, 131, 132, 246 आदि अनुच्छेदों में दिखायी देती है। इसका तात्पर्य है क न्यायपालिका संसद एवं राज्य विधानसभा द्वारा पारित किसी भी कानून को या अन्य प्रशासनिक निर्णय को असंवैधानिक घोषित कर सकती है। यह व्यवस्था हमारे संविधान में अमेरिकी संविधान से ली गई है। इसका कारण यह है कि हमारे देशमें संविधान सर्वोच्च है। (सिद्धांततः जनता संप्रभु है)। भारत सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था की गई थी लेकिन इसका क्षेत्रा काफी सीमित था। परंतु वर्तमान संविधान के तहत इसकी शक्ति न केवल केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की शक्तियों के संदर्भ में वर्णित है। बल्कि यह व्यापक शक्ति के रूप में दिखायी देती है।

न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग

संविधान के लागू होने के पश्चात् सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने कई वादों में कुछ ऐसे निर्णय दिए हैं, जिनमें न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धांत का प्रयोग किया गया है। 1950 में पटना उच्च न्यायालय ने बिहार भूमि सुधार अधिनियम के अनु. 14 द्वारा प्रदत्त विधि के समक्ष समानता के अधिकार का अतिक्रमण करने के आधार पर अवैध घोषित किया। गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमा 1950 में निवारक निरोध अधिनियम के 14वें खण्ड को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया कि निरुद्ध व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारणों की सूचना अवश्य दी जानी चाहिए।

इब्राहिम वजीर बनाम बंबई राज्य मुकदमा में सर्वोच्च न्यायालय ने पाकिस्तानी शरणार्थियों के आगमन पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से 1949 में बनाए गए कानून के खण्डन को इसलिए अवैध घोषित किया कि यह भारत के किसी भी भाग में निवास के अधिकार को प्रतिबंधित करता था। गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मुकदमा 1967 में उच्चतम न्यायालय ने यह विचार प्रस्तुत किया कि संसद मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है लेकिन ऐसे किसी संशोधन से वह संविधान के आधारभूत ढाँचे को प्रभावित नहीं कर सकती है। न्यायिक पुनरावलोकन के परिप्रेक्ष्य में सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय मील का पत्थर है।

मेनका गाँधी बनाम भारत संघ मुकदमा, 1978 में सर्वोच्च न्यायालय ने अमेरिकी विधि की सम्यक प्रक्रिया की संकल्पना को भारतीय संदर्भ में भी उचित ठहराया कि विधि अवश्य ही निष्पक्ष न्यायसंगत और युक्ति-युत हानी चाहिए अर्थात् विधि निरंकुश नहीं होनी चाहिए। संविधान के प्रथम संशोधन द्वारा 9वीं अनुसूची को स्थापित किया गया था। ताकि इसे न्यायिक पुनरावलोकन से बाहर रखा जा सके लेकिन उच्चतम न्यायालय ने अप्रैल 2007 में दिए गए एक विशेष निर्णय में यह कहा है कि अनुसूची 9 के अन्तर्गत अप्रैल 1973 के बाद डाले गए प्रावधानों का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है (क्योंकि 1973 में मूल ढांचे का सिद्धांत दिया गया)।

न्यायालय की अवमानना (Contempt of Court)

भारत में विधि के शासन की सर्वोपरिता के सिद्धांत को स्वीकृत किया गया है। विधि के शासन में विधि सर्वोपरि एवं सर्वोच्च मानी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति विधि के अधीन होता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य होता है कि वह विधि का प्रवर्तन करने वाले न्यायालय में आदेशों एवं निर्णयों की जानबूझकर आलोचना न करे। यदि कोई व्यक्त न्यायालय के आदेशों अथवा निर्णयों की जानबूझकर अवहेलना करता है अथवा अनावश्यक एवं अनुसूचित आलोचना करता है तो वह न्यायालय का अवमानना माना जाता है।

भारतीय संविधान में तथा न्यायालय से सम्बन्धित विधि में 'न्यायिक अवमान' का वर्णन किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार, उच्चतम न्यायालय को अभिलेख न्यायालय मानते हुए यह कहा गया है कि 'उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा और उसको अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति सहित ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होगी'। संविधान के अनुच्छेद 215 में भी ऐसी ही व्यवस्था कर निर्धारित किया गया है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा और उसको अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति सहित ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी।

संवैधानिक व्यवस्था के साथ ही न्यायालय की अवमान से सम्बन्धित विधि भी है जिसे 'न्यायालय अवमान अधिनियम 1971' के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस अधिनियम की धारा 2 (क) में 'न्यायालय अवमान' की परिभाषा दी गयी है। न्यायालय अवमानना में दो प्रकार की बात की गयी है:

1. **सिविल अवमानना**—किसी न्यायालय के निर्णय, डिक्री, आदेश को भंग करना।
2. **दाण्डिक अवमानना**—न्यायालयी विषयों पर प्रकाशन उचित / सम्यक प्रकार से न करना जिससे न्यायालय पर लांछन लगता हो, या न्यायिक कार्यों में बाधा उत्पन्न हो।

निम्नलिखित स्थितियों में न्यायालय का अवमान नहीं होता, यदि:

1. विषय का निर्दोष एवं सद्भावपूर्ण प्रकाशन हो।
2. न्यायिक कार्यों की सही एवं उचित रिपोर्टिंग हो।
3. अधीनस्थ न्यायालयों के विरुद्ध की गयी शिकायतें सद्भावनापूर्ण हों।
4. न्यायालयों की गुप्त बैठकों की कार्यवाहियों की रिपोर्ट का सही प्रकाशन हो।

न्यायालय की अवमानना सिद्ध होने पर 6 माह का कारावास या 2000 रुपये अथवा सजा एवं जुर्माना दोनों एक साथ प्रदान कर सकता है। न्यायालय के न्यायाधीशों को भी न्यायालय की अवमानना के लिए दण्डित किया जा सकता है।

न्यायिक सक्रियतावाद (Judicial Activism)

भारतीय संविधान ने न्यायपालिका को दो प्रमुख कार्य सौंपे हैं। (1) न्याय करना (2) संविधान की व्याख्या करना। संविधान की व्याख्या के अधिकार ने न्यायपालिका की सक्रियता में वृद्धि कर दी है। आरम्भ में न्यायालय ने 'विधि की स्थापित प्रक्रिया' जो कि जापान से ली गयी शब्दावली है, के आधार परा संविधान की व्याख्या की।

विधि की स्थापित प्रक्रिया का अर्थ है कि किसी भी विधि की विधिमान्यता पर इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं होगा कि वह अयुक्तियुक्त या न्याय विरुद्ध है। परन्तु 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' 1978 के वाद में न्यायालय ने अमेरिका में प्रचलित 'विधि की सम्यक प्रक्रिया' को अपना लिया अर्थात् विधि की युक्तियुक्तता एवं न्याय योग्यता महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गया। परिणामस्वरूप संविधान की व्याख्या ने विस्तारित रूप प्राप्त कर लिया।

संविधान की व्याख्या के विस्तारित अधिकार ने न्यायपालिका का प्रशासक, सुधारक, नीति-निर्धारक आदि भूमिका निभाने का अवसर प्रदान कर दिया है। दूसरे शब्दों में न्यायपालिका ने विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्यों को अपने हाथ में ले लिया है। न्यायपालिका की इस नयी भूमिका को ही न्यायिक सक्रियता के नाम से जाना जाता है। जब न्यायपालिका अपने परम्परागत कार्यों से आगे जाकर सामाजिक आर्थिक न्याय के पहलू के आधार पर सरकार के अंगों को दिशा-निर्देश देने लगती है जो उसके सामान्यत: अधिकार क्षेत्र में नहीं आते तो ऐसी प्रवृत्ति को न्यायिक सक्रियतावाद कहा जाता है।

आधार

न्यायिक सक्रियता के आधार को दो भागों में बांटा जा सकता है। न्यायपालिका के सक्रिय होने का एक आधार तो संवैधानिक है तथा दूसरा कुछ सामान्य कारण हैं, जिसने न्यायपालिका को सक्रिय कर दिया है।

संवैधानिक आधार

संविधान में विभिन्न अनुच्छेदों में संविधान की व्याख्या करने का अंतिम अधिकार न्यायपालिका को प्राप्त है।

- अनु. 13 (2) जिसके अंतर्गत यह प्रावधान है कि राज्य कोई ऐसी विधि नहीं बनायेगा जो मूलाधिकारों को छीनती या न्यून करती हो। इस विधि की मान्यता न्यायालय द्वारा निर्धारित की जाती है।
- अनु. 32 जिसमें न्यायपालिका मूलाधिकार की संरक्षक के रूप में सामने आती है।
- केन्द्र राज्य अथवा राज्य-राज्य के विवादों में विधि के प्रश्न की व्याख्या करने में हस्तक्षेप, (अनु. 131)।
- संविधान संशोधन के संदर्भ में (अनु. 368) यह देखने के लिये कि संशोधन संविधान के मूल ढांचे को प्रभावित तो नहीं कर रहा है, न्यायपालिका हस्तक्षेप करती है।
- इसके अतिरिक्त न्यायपालिका की सक्रियता का मुख्य साधन जनहितवाद है। पहले सामान्य प्रक्रिया के अनुसार वही व्यक्ति न्यायालय जा सकता था जिसके अधिकारों का हनन हुआ हो। परंतु 1979 के बाद इस अवधारणा में बदलाव आया। 1979 में हुसैनारा खातून बनाम बिहार सरकार वाद में प्रथम बार पीड़ित व्यक्ति ने नहीं, बल्कि किसी अन्य ने उसकी ओर से याचिका दायर की थी। बाद में ऐसे सभी वादों को जनहित का नाम दे दिया गया।

सामान्य आधार

- विधि के शासन की स्थापना सुनिश्चित करने के लिये न्यायपालिका की भूमिका।
- नागरिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में न्यायपालिका की भूमिका।
- राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण न्यायपालिका की सक्रियता में वृद्धि।
- गठबंधन सरकारों के दौर में सरकार की अक्षमता भी न्यायपालिका को सक्रिय कर देती है।
- उच्चतम न्यायालय के पिछले कुछ फैसलों ने भारत के आम लोगों को एक सुखद आश्चर्य से भर दिया है। लोगों को भ्रष्ट व्यवस्था में एक आशा की किरण दिखाई दे रही है कि अब कम-से-कम एक जगह सही सुनवाई होगी। लेकिन उच्चतम न्यायालय की इस मुहिम पर कई भृकुटियां भी तन गई हैं।

जनहित मुकदमे (Public Interest Litigation)

जनहित अभियोग तथा न्यायिक सक्रियतावाद के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने अंग्रेज़ी विधि व्यवस्था के 'पीड़ित व्यक्ति स्वयं न्यायालय की शरण ले' के सिद्धांत को बदलते हुए यह व्यवस्था की कि कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह या वर्ग की ओर से वाद लेकर न्यायालय में जा सकता है जिसको उसके कानूनी हक या संवैधानिक अधिकारों से संचित कर दिया गया है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गरीब, अपंग, पीड़ित अथवा सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से दलित लोगों के मामले में आम जनता का कोई भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष 'वाद' ला सकता है। न्यायाधीश कृष्णा अय्यर के अनुसार, 'वादकरण' और पीड़ित व्यक्ति की संकुचित धारणा का स्थान अब 'वर्ग कार्यवाही' और 'लोकहित में कार्यवाही' ने ले लिया है।

जनहित अभियोग अथवा जनहित वाद की विशेष बात यह है कि न्यायपालिका अपने समस्त तकनीकी और कार्यविधि सम्बन्धी नियमों की पहरवाह किए बिना एक सामान्य-पत्र के आधार पर ही न्यायिक कार्यवाही कर सकता है। जस्टिस पी.एन. भगवती के अनुसार, 'कोई भी जन हितैषी व्यक्ति या संस्था एक पोस्टकार्ड लिखकर भी अन्याय के विरुद्ध आवाज उठा सकता है'। दरअसल जनहित मुकदमों की खास विशेषता यह है कि उन्हेंयाचिका औपचारिकाताओं से नहीं गुजरना पड़ता।

जनहित याचिका का जन्मदाता ऑस्ट्रेलिया है सबसे ज्यादा प्रयोग अमेरिका में होता है। भारत में इसका प्रारंभ भागलपुर जेल में विचाराधीन बंदी रखे गये कैदियों के प्रकरण से हुआ। बिहार की इस जेल तथा अन्य जेलों में सैकड़ों विचाराधीन कैदी किसी न्यायालयीय कार्यवाही के बिना ही वर्षों से जेलों में दु:ख पा रहे थे। इसका कारण यह था इन कैदियों की ओर से न तो जमानत देने वाला था और न ही पैरवी करने के लिए कोई वकील था। इनके इस विषय में पुलिस आयोग के सदस्य के.एफ. रूस्तम जी ने एक लेखा लिखा तथा वकील श्रीमती हिंगोरानी ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत इन कैदियों के मामले को भारत के सर्वोच्च न्यायालय में उठाया। इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित के आधार पर निर्णय दिया कि बिना किसी कारण के किसी व्यक्ति को जेल में बंदी न रखा जाए।

यह अवधारणा प्रत्यक्षत: अनु. 32(2) के तहत न्यायिक निर्णय के माध्यम से उत्पन्न हुआ है। जनहित अभियोगके आधार पर न्यायालय ऐसे सभी मामलों में हस्क्षेपव कर सकता है जिनमें सरकार और प्रशासन के कार्यों से ऐसे निर्धन और असहाय व्यक्ति पीड़ित हुए हैं जो स्वयं न्यायालय की शरण में जाने के लिए समर्थ हैं। जनहित अभियोग का दुरूपयोग न हो सके, इसके लिए न्यायमूर्ति भगवती ने इस सम्बन्ध में निर्देश दिया कि न्यायालयों के द्वारा इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि अभियोग दायर करने वाला व्यक्ति निजी हितों, राजनीतिक कारणों अथवा अन्य किसी प्रकार के किन्हीं निहित स्वार्थों के वश में तो अभियोग दायर नहीं कर रहा है। जनहित मुकदमों की निम्न आधार पर आलोचना की गयी है-

1. यदि सामान्य-पत्र के आधार पर मूल अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित अभियोग दायर होने लगे तो विचाराधीन मुकदमों की संख्या अत्यधिक रूप में बढ़ जाएगी तथा इससे महत्त्वपूर्ण मुकदमों की सुनवाई में विलम्ब होगा।
2. इस व्यवस्था से सरकार के तीन अंगों—व्यस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में अनावश्यक तनाव और विाद की स्थिति पैदा हो जाएगी।
3. इन जनहित अभियोगों के बारे में न्यायालयों के द्वारा दिए गए निर्णय वस्तुत: लागू हो जाएगी, व्यवहार में इस बात की कोई गारंटी नहीं है।

जनहित अभियोगों के सम्बन्ध में की गईइन आलोचनाओं के बावजूद भी इस बात से तो सहमत होना ही पड़ेगा कि इस व्यवस्था ने असहाय व्यक्तियों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए शासन और प्रशासन को अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत करने तथा प्रशासन के मनमाने और निरंकुश आचरण पर रोक लगाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया है।

मूल संरचना सिद्धांत

संविधान की कुछ व्यवस्थायें अन्य व्यवस्थाओं की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है, इन्हीं विशेष उपबंधों से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलती है इन्हीं व्यवस्थाओं के समुच्चय को आधारभूत संरचना कहा जाता है। अर्थात् ऐसी व्यवस्था/ प्रावधान जिस पर सम्पूर्ण संवैधानिक संरचना आधारित मानी जाती है उसे आधारभूत ढाँचा कहा जाता है।

भारतीय संविधान में मूल ढांचे की अवधारणा का प्रतिपादन सर्वप्रथम केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के वाद में 24 अप्रैल 1973 को सुप्रीम कोर्ट के संवैधानिक पीठ ने किया। इस वाद में 24वें, 25वें, 29वें संविधान संशोधन को चुनौती दी गयी थी जिसे संवैधानिक ठहराते हुए भी सुप्रीम कोअर ने संसद की संशोधन शक्ति पर अंतर्निहित सीमा की अवधारणा का प्रतिपादन किया। जिसका सम्बन्ध 'मूल ढाँचे' से है।

इस विवेचन के बाद भी स्पष्ट है कि 7:6 से सुप्रीम कोर्ट ने 'आधार भूत संरचना' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। लेनिक सामूहिक रूप से निर्णय में यह नहीं बताया गया कि भविष्य में कौन-सी व्यवस्थाएँ उसके अंतर्गत आयेगी बल्कि यह कहा गया कि समय और परिस्थिति के अनुसार आधारभूत संरचना का सिद्धांत न्यायपालिका बताता रहेगा क्योंकि संविधान गतिशील अवधारणा है ऐसा तथ्यात्मक रूप से मानने पर संविधान में जड़त्व की स्थिति आ जायेगी।

आधारभूत ढांचे की अवधारणा से संबंधित पहला मामला 39वें संशोधन 1975 द्वारा राष्ट्रपति/ उपराष्ट्रपति/ प्रधानमंत्री के निर्वाचन को मूल अधिकार के बाहर कर दिया गया था जिसे इन्दिरा गांधी बनाम राजनारायण वाद में चुनौती दी गई। सुप्रीम कोर्ट ने इसे असंवैधानिक ठहराया और कहा कि अनु. 14 का उल्लंघन है न्यायालय ने कहा कि अनु. 14 आधारभूत ढांचा है।

वादों तथा अन्य निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों ने निम्न बिन्दुओं को आधारभूत ढाँचा माना है:

1. विधि का शासन
2. संविधान की सर्वोच्चता
3. संघवाद
4. पंथनिरपेक्षता
5. संसदीय प्रणाली कीसरकार
6. न्यायपालिका की स्वतंत्रता
7. अनुच्छेद 32, 136, 141, 142

1980 में मिनर्वा मिल्स के मुकदमें में निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर न्यायपालिका की सर्वोच्चता को स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस निर्णय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने 42वें संशोधन के कुछ खण्डों को असंवैधानिक घोषित कर दिया। इनमें उपर्युक्त अनुच्छेद 368(4) और (5) भी हैं जिन्हें न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया है।

वर्तमान स्थिति यह है कि किसी भी संवैधानिक संशोधन को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है कि उससे संविधान के मूल ढाँचे को क्षति पहुँचती है। ऐसा कोई संशोधन जो संविधान की 'अनिवार्य विशेषताओं के प्रतिकूल है, न्यायपालिका द्वारा असंवैधानिक घोषित कर दिया जाएगा। इस प्रकार संसद की संशोधन शक्ति सीमित हो गयी है और पुन: न्यायपालिका की प्रधानता स्थापित हो गई है।

उपचारात्मक याचिका (Curative Petition)

उपचारात्मक याचिका एक नवीन न्यायिक प्रक्रिया की संकल्पना को दर्शाता है। वह न्याय के तर्कसंगत स्वरूप तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का बल

प्रदान करता है। यह न्यायालय द्वारा की गई न्यायिक भूल एवं गलतियों को सुधारने के दृष्टिकोण को बतलाता है। उच्चतम न्यायालय ने इस संकल्पना को रूप अशोक कूड़ा बनाम अशोक हूड़ा मुकदमा (2002) में व्यक्त किया। यह प्रगतिशील न्यायिक प्रक्रिया की संकल्पना का परिचायक है जिसके अंतर्गत न्यायिक भूल या न्यायिक गलतियों को स्वस्थ एवं सही दिशा प्रदान करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस प्रक्रिया के अंतर्गत बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में विधि को सराहे जाने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है।

इस प्रक्रिया के अंतर्गत विशेष परिस्थितियों में जब नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का हनन हो तथा इससे कोई पक्ष प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो तो उच्चतम न्यायालय अपने द्वारा दिए गए निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है। इस संकल्पना के पूर्व उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पुनरावलोकन की याचिका अनु. 137 के अंतर्गत दायर की जा सकती थी जिस पर सुनवाई उसी पीठ के द्वारा की जा सकती थी जिसने निर्णय दिया हो। परन्तु इस संकल्पना के अंतर्गत इसमें नए सिरे से सुनवाई हो सकती है।

इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्चतम न्यायालय ने कुछ शर्तों को निर्धारित किया है जैसे इस प्रकार की याचिका को दायर करने के लिए किसी विशिष्ट वकील के प्रमाण पत्र का होना आवश्यक है। इस याचिका के अंतर्गत सुनवाई के लिए एक 'एमीकस क्यूरी' (सहायता के लिए वकील) की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है जो न्यायपालिका को सुनवाई में सहयोग करेगा। इस याचिका की स्वीकृति मूल पीठ के न्यायाधीशों और तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों के द्वारा दी जाएगी।

महत्त्व

उपचारात्मक याचिका एक नवीन न्यायिक प्रक्रिया की संकल्पना को बतलाता है जो न्यायिक व्यवस्था में प्रगतिशीलता का परिचायक है। यह न्याय के विस्तार को बतलाता है, इससे नागरिक सुरक्षा को तथा सार्वजनिक हितों को बल मिलता है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को और भी व्यापकता प्राप्त होती है। इसमें बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में विधि की व्याख्या और स्थापना की दृष्टिकोण निहित हैं। वर्तमान समय में जबकि खगोलीकरण ने तेजी से आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति को परिवर्तित किया है तथा मानव जीवन में इसके कारण जटिलता आई है न्याय के इस संकल्पना से वृहद न्यायिक उपचार प्रदान करने का दृष्टिकोण अर्थपूर्ण है।

अन्य प्रमुख न्यायालय (Other Major Courts)

लोक अदालत (Public Court)

शीघ्र एवं सस्ता न्याय उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जनता के न्यायालय के रूप में लोक अदालतों की स्थापना की गई है। 6 अक्टूबर, 1985 को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायविद तथा मुख्य न्यायाधीश पी.एन. भगवती की अध्यक्षता में प्रथम लोक अदालत का आयोजन दिल्ली में किया गया।

लोक अदालत द्वारा निर्णय दे दिये जाने के बाद, कोर्ट शुल्क वापस कर दिये जाते हैं। न्यायिक पदाधिकारी अथवा सरकार द्वारा निर्धारित योग्यता रखने वाले व्यक्ति लोक अदालत की अध्यक्षता करते हैं।

ग्राम न्यायालय (Village Court)

ग्राम न्यायालय कानून, नागरिकों को उनके दरवाजे पर न्याय उपलब्ध कराने का प्रयास है। ग्राम न्यायालय अधिनियम के वे प्रावधान उन क्षेत्रों में जिनमें इनका विस्तार किया गया है, 2 अक्टूबर, 2009 से लागू हो गया। ग्राम न्यायालय का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को उनके दरवाजे पर कम लागत पर न्याय उपलब्ध करवाना है। ग्राम न्यायालय प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय होगा और इसके पीठासीन अधिकारी की नियुक्ति उच्च न्यायालय के साथ परामर्श करके राज्य सरकार द्वारा की जाएगी।

ग्राम न्यायालय सचल न्यायालय होंगे और उन्हें दांडिक तथा दीवानी न्यायालय दोनों की शक्तियां प्राप्त होंगी। इसकी अपील 6 माह के अन्दर जिला/सत्र न्यायालय में की जा सकती है।

कुटुम्ब न्यायालय (Family Court)

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 के अधीन कुटुम्ब या पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना की गई है। इस अधिनियम द्वारा न्यायालय को पारिवारिक विवादों में मैत्रीपूर्ण समझौतों को बढ़ावा देने के लिए स्वविवेक का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है इसका मुख्य उद्देश्य विवाह तथा अन्य पारिवारिक मुद्दों को निपटाना है। विवाद की सच्चाई का पता लगाने के लिए न्यायालय अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित कर सकता है। सामान्यत: विवादों में वकीलों की उपस्थिति नहीं होती, लेकिन जटिल विषयों पर वकीलों को प्रस्तुत होने की अनुमति दी जा सकती है। राज्य सरकार 10 लाख से अधिक की जनसंख्या पर या जहाँ उचित समझे परिवार न्यायालय की स्थापना कर सकती है। उच्च न्यायालय में कुटुम्ब न्यायालयों के निर्णयों एवं आदेशों के विरुद्ध अपील की जा सकती है, साथ ही संविधान के अनुच्छेद 133 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील की जा सकती है।

विशेष अधिकरण (Special Tribunal)

विशेष पद्धपति के मामलों की सुनवाई के लिए हमारे यहाँ समय-समय पर अधिकरणों, न्यायाधिकरणों की स्थापना की जाती रही है। इनमें से प्रमुख अधिकरणों के नाम निम्नांकित हैं: श्रम एवं औद्योगिक अधिकरण, सेवा अधिकरण, ऋण वसूली अधिकरण, परिवहन अधिकरण, मोटरयान दुर्घटना दावा अधिकरण, कराधान अधिकरण आदि। अनेक राज्यों में किराया नियंत्रण अधिकरणों का गठन किया गया है।

विशेष अदालतें (Special Court)

वर्ष 1979 में संसद द्वारा पारित विशेष न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत विशेष न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान किया गया है। उच्च सार्वजनिक एवं राजनीतिक पदों पर बैठे व्यक्तियों द्वारा किये गये अपराधों की त्वरित जाँच और निपटारे के लिए विशेष न्यायालयों का गठन किया गया है। इसमें

जिला न्यायालयों एवं न्यायालयों के कार्यरत न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है। ये न्यायालय यद्यपि मुकदमे की सुनवाई तेजी से करते हैं, परंतु समस्त प्रक्रिया एवं दण्ड का निर्धारण भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार ही होता है। विशेष अदालतों के निर्णय के विरुद्ध केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही 30 दिनों के अंदर अपील दायर की जा सकती है।

फास्ट ट्रैक अदालतें (Fast Track Courts)

इन अदालतों को जनपद स्तर के तथा अधीनस्थ न्यायालयों में पुराने मुकदमों को एक निर्धारित समय सीमा के निपटारे के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया। प्रारंभ में इस प्रकार की 450 अतिरिक्त अदालतें स्थापित किये जाने का प्रावधान किया गया है, जो शत-प्रतिशत केन्द्र सरकार की आर्थिक सहायता के आधार पर संचालित की गयी हैं। इनमें विशेष रूप से 2 वर्ष से अधिक पुराने ऐसे मुकदमों को निपटारे के लिए चुना जाता है जिनमें अपराधी जमानत पर हैं। विभिन्न राज्यों में फास्ट ट्रैक अदालतों का निर्धारण किया गया है।

न्याय पंचायत (Nyay-Panchayat)

पंच परमेश्वर की संकल्पना पर आधारित ग्राम पंचायत स्तर पर न्याय पंचायत व्यवस्था भारतीय शासन व्यवस्था में अत्यनत प्राचीन है, लेकिन वर्तमान में इसे संवैधानिक दायरे में भी लाने के प्रयास किये गये हैं। संविधान के राज्य के नीति निदेशक तत्त्व के भाग 4 अनुच्छेद 39(क) में यह प्रावधान है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधि तंत्र इस प्रकार के कार्य करे कि समान अवसर के आधार पर कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अधिकार से वंचित न रह जाये। अनुच्छेद 40 के प्रावधानों के अंतर्गत देश में गठित ग्राम पंचायतों द्वारा इसी आधार पर अनेक राज्यों में न्याय पंचायतों की स्थापना की गई है।

ई-अदालत (E-Courts)

9 जुलाई, 2007 को निवर्तमान राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा अदालतों के कम्प्यूटरीकरण की ई-परियोजना का उद्घाटन किया गया। अदालतों के कम्प्यूटरीकरण की यह परियोजना भारतीय न्याय व्यवस्था में राष्ट्रीय नीति एवं प्रौद्योगिकी पर ई-समिति द्वारा सौंपी गई रिपोर्ट के आधार पर तैयार की गई है। इस परियोजना को, जिसकी लागत 854 करोड़ रुपए है, पाँच वर्षों में तीन चरणों में कार्यान्वित किया जाना है। ई-अदालत परियोजना से न्यायालयों में सभी मामलों का लेखा-जोखा तैयार करने में सहायता मिलेगी। इससे सर्वोच्च न्यायालय से देश के सभी न्यायालय वायरलेस कनेक्टिविटी से जुड़ जाएँगे।

मोबाइल अदालत (Mobile Court)

भारत की पहली मोबाइल कोर्ट का उद्घाटन सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के.जी. बालाकृष्णन ने हरियाणा के मेवात जिले में किया। देश के पिछड़े और दूरदराज क्षेत्रों में लोगों को सस्ता और उनके निकट न्याय उपलब्ध कराने के उद्देश्य से इस प्रकार की चलायमान अदालतों का गठन किया गया है, ताकि लोगों को उनके निकट ही सस्ता न्याय मिल सके।

अभिवाक् सौदेबाजी (Plea Bargaining)

मुकदमे के दौरान आरोपी को आपसी समझौते व पीड़ित पर भी सहमति से मुकदमों को वापस लेना। जुलाई 2006 में संसद ने अपराध कानून संशोधन विधेयक क्रिमीनल प्रोसेसर कोड पारित किया। इसके द्वारा अनु. 21(ए) में परिवर्तन किया गया है। 7 साल की सजा तक अपराधिक मामले प्रभावित पक्ष सहमति से अदालती सुनवाई के दौरान वापस लिया जा सकता है। इसके तहत बहला-फुसलाकर या धमकी देकर गवाही दिलाने वाले को 7 वर्ष की सजा का प्रावधान। दिल्ली हाई कोर्ट के निदेशक पर इसे 27 जुलाई, 2009 को तीस हजारी कोर्ट में शुरू किया गया।

समानांतर अदालतें (Parallel Court)

समानांतर अदालत से तात्पर्य ऐसे न्यायिक प्राधिकार या अर्द्ध-न्यायिक मंचों की स्थापना से है जो अदालतों जैसे ही होते हैं। इनमें न्यायाधिकरण भी सम्मिलित होते हैं। ये एक तरह की तदर्थ संस्थाएं होती हैं जो जटिल मुद्दों से निपटने में पूरी तरह सक्षम नहीं होती है। संभावना यह भी रहती है कि इनसे आम लोगों के नागरिक अधिकारों का उल्लंघन हो जाए। इनके गठन के पीछे किसी तरह का विधिक अधिकार नहीं होता है। ये एक तरीके से अवैध तौर पर व्यक्तियों, संस्थाओं या फर्मों द्वारा संचालित किए जाते हैं।

तालिका 15.4: भारत के उच्च न्यायालयः समाग्रावलोकन

उच्च न्यायालय का नाम	स्थापना वर्ष	प्रदेशीय अधिकारिता	स्थान (मुख्यपीठ)	खंडपीठ	सर्किट बैंच	लाक्षणिक विशेषता
मुंबई	1862	महाराष्ट्र, गोवा, दादर और नगर हवेली, दमन दीव	मुंबई	नागपुर, पणजी और औरगांबाद		भारत में सर्वप्रथम स्थापित किये जाने वाले उच्च न्यायालय है-मुंबई (बंबई), मद्रास एवं कलकत्ता।
कोलकाता	1862	पश्चिम बंगाल व अंडमान	कोलकाता	पोर्ट ब्लेयर		

(Continued)

तालिका 15.4: भारत के उच्च न्यायालयः समाग्रावलोकन *(Continued)*

उच्च न्यायालय का नाम	स्थापना वर्ष	प्रदेशीय अधिकारिता	स्थान (मुख्यपीठ)	खंडपीठ	सर्किट बैंच	लाक्षणिक विशेषता
मद्रास	1862	तमिलनाडु और पांडिचेरी	चेन्नई	मदुरै		
कर्नाटक	1884	कर्नाटक	बंग्लुरू	हुबली, धारवाड़, गुलबर्ग		
इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद	लखनऊ		चौथे उच्च न्यायालय की स्थापना इलाहाबाद में की गयी।
पटना	1916	बिहार	पटना	राँची		
जम्मू एवं कश्मीर	1928	जम्मू-कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू			भारत में न्यायिक प्रणाली की शुरूआत 1773 के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से कही जा सकती है जब सर ऐलिजा इम्प्रे प्रथम न्यायाधीश बने।
ओड़िशा	1948	ओड़िशा	कटक			
राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर	जयपुर		
गुवाहाटी	1948	असम, नागालैंड, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश	गुवाहाटी	कोहिमा, ईटानगर आईजॉल		आजादी से पहले भारत में सर्वोच्च अपील का अधिकारिता 'हाउस आफ लाड्स' के पास थी
आंध्र प्रदेश	1954	आंध्र प्रदेश	हैदराबाद			
मध्य प्रदेश	1956	मध्य प्रदेश	जबलपुर	ग्वालियर एवं इंदौर		
केरल	1956	केरल और लक्षद्वीप	एर्नाकुलम, कोच्चि			भारत में पहली बार लॉर्ड कॉर्नवालिस ने दीवानी और फौजदारी को 1793 में अलग किया।
पंजाब व हरियाणा	1947*	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़			
दिल्ली	1966	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र	नई दिल्ली			भारत में कानून से संबंधित मामले में सुधार और सुझाव के लिए राष्ट्रीय विधि आयोग का गठन किया गया।
गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद			जिसके प्रथम अध्यक्ष लार्ड कॉर्नवालिस थे।
हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला			कानून की पहुंच हर व्यक्ति तक हो और उसका लाभ सभी को मिले उसमें समानता हो इत्यादि के लिए राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण की स्थापना 1987 में की गयी जिसे 'नाल्सा' कहते है।

* In Punjab & Haryana, High court was first established in 1919 then relocated in 1947.

(Continued)

उच्च न्यायालय का नाम	स्थापना वर्ष	प्रदेशीय अधिकारिता	स्थान (मुख्यपीठ)	खंडपीठ	सर्किट बैंच	लाक्षणिक विशेषता
सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक			नाल्सा के तर्ज पर 'साल्सा' और साल्सा के तर्ज पर 'डाल्सा' बनाये गये।
उत्तराखंड	2000	उत्तराखंड	नैनीताल			स्वतंत्र भारत के पहले विधि आयोग के अध्यक्ष ए.सी. शीतलवाड़ थे।
त्रिपुरा	2013	त्रिपुरा	अगरतला			दिल्ली मात्र एक केंद्र शासित प्रदेश है जिसका अपना उच्च न्यायालय है।
मेघालय	2013	मेघालय	शिलांग			आजादी के समय सर्वोच्च न्यायालय में कुल आठ न्यायाधीश थे और देश की पहली महिला न्यायाधीश फातिमा बीवी थी। न्यायमूर्ति जे.एस. खेहट देश के पहले सिक्ख न्यायाधीश थे।
मणिपुर	2013	मणिपुर	इम्फाल			

अध्याय सार संग्रह

- सर्वोच्च न्यायालय भारत का सर्वोच्च अपीलीय (दीवानी तथा फौजदारी) न्यायालय है तथा वह संविधान तथा व्यक्ति के मूल अधिकार का संरक्षक भी है।
- संसद द्वारा बनाये गये किसी विधि को सर्वोच्च न्यायालय इस आधार पर शून्य घोषित कर सकता है कि वह संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन करता हो।
- उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को राष्ट्रपति के समक्ष या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ ग्रहण करना होता है।
- सर्वोच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है। अभिलेख न्यायालय का तात्पर्य है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय विधि के रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए उन निर्णयों को साक्ष्य के रूप में सुरक्षित रखा जाता है (अनुच्छेद 129)।
- संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को स्वयं भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह सैनिक न्यायालय के सिवाय भारत राज्य क्षेत्र के किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपने यहाँ अपील की आज्ञा दे सकता है। इसकी इस शक्ति पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है।
- संविधान के अनुच्छेद 137 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह अपने द्वारा दिये गये निर्णय व आदेश पर पुनर्विचार कर उचित समझे तो उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकता है। ऐसा उस वक्त किया जाता है जब सर्वोच्च न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि उसके द्वारा दिये गये निर्णय में किसी पक्ष के प्रति न्याय नहीं हो सका है।
- अनुच्छेद 143 के तहत यदि राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि विधि या किसी अन्य तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न पैदा हुआ है जो सार्वजनिक हित का है तो वह उस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श माँग सकता है। परंतु उच्चतम न्यायालय न तो ऐसी सलाह देने के लिए बाध्य है और न ही दी गयी सलाह को राष्ट्रपति मानने के लिए बाध्य है। परंतु उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई सलाह अन्य सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होगी।
- अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय प्रमुख रूप से उत्तरदायी होता है ताकि वह मौलिक अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे।
- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के आचरण पर संसद या राज्य विधानमण्डल में बहस नहीं की जा सकती है।
- संसद द्वारा बनाये गये नियमों तथा अनुच्छेद 145 के आधीन उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा सुनाये गये निर्णयों का पुनरावलोकन करने की शक्ति प्राप्त है।
- प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा, किंतु संसद को यह शक्ति है कि वह दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकेगी।

- प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायमूर्ति तथा जैसा राष्ट्रपति उचित समझता है, अन्य न्यायाधीश होते हैं। लेकिन उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या संसद निर्धारित करती है।
- उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक अपना पद धारण करता है।
- उच्च न्यायालयों के वेतन भत्ते राज्य की संचित निधि पर भारित होते हैं तथा पेंशन केन्द्र की संचित निधि से दी जाती है।
- 7वें संविधान संशोधन के अनुसार संविधान के आरम्भ होने से पहले की गई राज्यों एवं संघ के बीच की गई संधियों और समझौते इत्यादि में उच्चतम न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार नहीं आता।
- सरकारों के मध्य झगड़ा किसी न्यायोचित अधिकार पर आधारित होना चाहिए। सरकारों के बीच जो झगड़े किसी विधि पर आधारित न हो या जिनका आधार वैज्ञानिक न हो, वे सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते।
- उच्चतम न्यायालय को ऐसे मामले में, जो वित्त आयोग ने संघ और राज्यों में कई प्रकार के खर्चे के विषय में सौंपे हो, कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।
- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय बहुमत के द्वारा होंगे। न्यायाधीश बहुमत के निर्णय से भिन्न अपना पृथक निर्णय दे सकता है। वह अन्य किसी प्रकार से बहुमत के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकेगा। बहुमत का निर्णय ही मान्य होगा।
- सर्वोच्च न्यायालय देश का सबसे बड़ा अपीलीय न्यायालय है। सर्वोच्च न्ययालय को भारत राज्य क्षेत्र के अंदर सभी उच्च न्यायालयों, प्रशासकीय अधिकरणों, श्रम न्यायाधिकरणों तथा राष्ट्रीय उपभोक्ता प्रतितोष आयोग के नियमों तथा आदेशों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है।
- राज्यों में उच्च न्यायालय की स्थापना या इससे सम्बन्धित व्यवस्था में परिवर्तन का अधिकार संसद को प्राप्त है।
- संविधान के अनुच्छेद 214 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा, किंतु अनुच्छेद 231 के तहत एक ही उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र दो या दो से अधिक राज्यों या संघीय क्षेत्र तक विस्तृत हो सकता है।
- जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद खाली हो या वह अनुपस्थित हो या किसी असमर्थता के कारण अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहा है तो राष्ट्रपति अन्य न्यायाधीशों में से एक को उस पद के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए नियुक्त करता है।
- जिला न्यायाधीशों के स्थानांतरण की शक्ति उच्च न्यायालय को ही प्राप्त है तथा उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही कर सकता है।
- गुवाहाटी उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश तक है।